ISSN : 2394-1723

वागर्थ

भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका

वर्ष 30, अंक 348, नवंबर 2024

संरक्षक

इंद्रनाथ चौधुरी

संपादक

शंभुनाथ

प्रबंध संपादक

प्रदीप चोपड़ा

प्रकाशक

डॉ. कुसुम खेमानी

संपादन सहयोग

अंक सज्जा

सुशील कान्ति

ऑनलाइन मल्टीमीडिया संपादक

उपमा ऋचा

upmamcreat@gmail.com

संपादकीय विभाग

36 ए, शेक्सपियर सरणी

कोलकाता–700017

vagarth.hindi@gmail.com

7449503734

(दिन 12 बजे से संध्या 6 बजे)

आवरण

तारक नाथ राय

इस अंक में

कल्पना के अंत से कुछ पहले : **संपादकीय** 5

कहानियां

कंबल : **सरिता कुमारी** 12

मॉर्निंग वाक : **मुहम्मद नसीरुद्दीन** 20

राजा बनोगे तो क्या खाओगे : **कमलेश** 25

वैसा ही घर (गुजराती) : **वीनेश अंताणी**

(अनुवाद : **कुशल खंधार**) 35

कविताएं

मनीष यादव/विनय सौरभ/पल्लव/चाहत अन्वी

रविशंकर सिंह/अनंत आलोक/दिनकर कुमार

मुख्तार अहमद/रमेश यादव/रामकुमार कृषक 43

बांग्ला कविताएं : **अनुराधा महापात्र**

(अनुवाद : **जयश्री पुरवार**) 66

खासी कविताएं : **सोसो थाम**

(अनुवाद : **श्रुति एवं माधवेंद्र**) 68

परिचर्चा

साहित्य की जरूरत : **अरुण कमल/विष्णु नागर**

अवधेश प्रधान/संजय कुंदन/अच्युतानंद मिश्र

संजय राय (प्रस्तुति : **राहुल गौड़**) 70

विश्वदृष्टि

नोबेल विजेता **हान कांग** से साक्षात्कार और कविताएं

अंग्रेजी से अनुवाद और प्रस्तुति : **उपमा ऋचा** 95

जैसा मैंने आरंभ में कहा, साहित्य की प्रासंगिकता हमेशा बनी रहेगी परंतु नए रूपाकारों द्वारा उसे परिवर्तित और परिमार्जित करने की जो कोशिशें हो रही हैं। उसके प्रति हमें और अधिक सचेत होने की जरूरत है। इन माध्यमों के प्रति अधिक आलोचनात्मक और प्रश्नाकुल होने की आवश्यकता है। सच्चा साहित्य हर दौर में सवाल उठाता है। वह हर तरह की सत्ता और ताकत के विरुद्ध खड़ा होता है। वह नियंत्रण की हर कोशिश का पर्दाफाश करता है। जाहिरन आज भी उसकी जरूरत है और पहले के किसी अन्य समय से अधिक जरूरत है।

आज इस बात को गहरे अर्थों में समझने की जरूरत है कि समाज में बढ़ती असहिष्णुता और हिंसा के मूल में आलोचना का नहीं होना केंद्रीय है। आलोचना-विहीन समाज को नियंत्रण में करना आसान है। आलोचना-विहीन समाज में स्वतंत्र विवेक की संभावना पर विराम लग जाता है और साहित्य की संभावना न्यून होती जाती है। इसलिए जरूरी है कि समाज में आलोचनात्मक विवेक विकसित हो। एक आलोचक समाज ही सच्चा साहित्य निर्मित कर सकता है।

हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत यूनिवर्सिटी, कलाडी-683574, जिला : अर्नाकुलम, केरल
मो.9213166256

आखिर कविता और संस्मरण ही क्यों आज अधिक अनुकूल विधाएं हैं

संजय राय

हमारा समय इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का समय है। लैपटॉप, टैब या मोबाईल अब हर हाथ में है। इंटरनेट हर उस आदमी के ऐक्सेस की वस्तु है जो मोबाईल चला रहा है। वेबसाईट, ब्लॉग तथा वीडियो प्लैटफॉर्म और सोशल मीडिया के सभी प्लैटफॉर्म अब उसकी पहुंच के भीतर हैं। सोशल मीडिया को गाली देना और साथ ही साथ उसका जमकर उपयोग करना हमारे समय का मुख्य चरित्र बन गया है।

उपर्युक्त सभी मीडिया अभिव्यक्ति के लिए मंच मुहैया करा रहे हैं। अब सत्ता के खिलाफ साहित्य लिखकर कोई गिरफ्तार नहीं होता, पर सोशल मीडिया पर सत्ता की खिलाफत कर गिरफ्तारी के तमाम उदाहरण इस बीच हमारे सामने आए हैं। बहरहाल डिजिटल मीडिया अथवा ई-मीडिया ने अभिव्यक्ति को सहज बना दिया है। जिस साहित्य को कभी ढंग का मंच नहीं मिला, वह भी अब डिजिटल मीडिया अथवा ई-मीडिया के दौर में प्रकाश में आ रहा है।

स्पष्ट है कि हाशिए के समाज की आवाजें अब साहित्य की विभिन्न विधाओं में मजबूती से सामने आने लगी हैं। किताब के प्रकाशक नहीं मिल रहे हैं तो डिजिटल मीडिया अथवा ई-मीडिया का सहारा लेकर लोग अपनी बातें रख रहे हैं। इस तरह प्रकाशन और अभिव्यक्ति पर एकाधिकार की प्रवृत्ति को धक्का लगा है। कह सकते हैं प्रिंट मीडिया की तुलना में डिजिटल मीडिया अथवा ई-मीडिया अपनी प्रकृति में अधिक लोकतांत्रिक है।

इसके साथ ही हमें इस बात पर भी ध्यान देना

होगा कि इन सभी प्लैटफॉर्मों पर तथ्य इकट्ठा हो रहे हैं। विश्व बाजार में तथ्यों का कारोबार जोर-शोर से चल रहा है। इन तथ्यों को खरीदने की क्षमता जिनके पास है, सत्ता में वही लोग टिक पा रहे हैं। हमारा समय तथ्यों की खरीद-फरोख्त का गवाह है। डिजिटल मीडिया अब राजनीतिक सत्ताओं को गिराने और बनाने का दमख़म रखती है। जो साहित्य हमारे समय के इस चरित्र को समझते-परखते हुए अपना चरित्र विकसित करेगा, वही साहित्य बचेगा।

हमारे समय की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है कि वह बहुत तेज गति से बदलता हुआ समय है। पहले के सभी समयों की तुलना में हमारे समय की गति में गुणात्मक वृद्धि हुई है। इस गति ने धैर्य और एकाग्रता जैसी चीजों को नष्ट किया है। जबकि साहित्य धैर्य, एकाग्रता और समय की मांग करता है। इस तरह साहित्य का चरित्र भीषण तेजी से बदलते हुए समय की गति का विरोधाभासी है। साहित्य अपनी तरह इससे जूझ भी रहा है। समय की गति वह नहीं बदल सकता, पर उस गति में बह जाना भी उसे मंजूर नहीं। साहित्य कभी भी अपने समय को नकार कर सार्थक नहीं हो सकता। अपने समय से वह जितना जूझेगा, उसकी सार्थकता उसी अनुपात में साबित होती रहेगी।

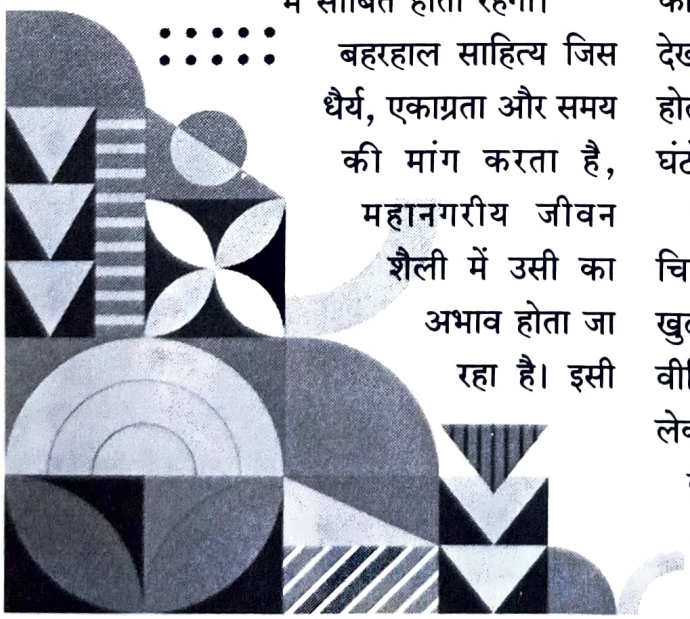

बहरहाल साहित्य जिस धैर्य, एकाग्रता और समय की मांग करता है, महानगरीय जीवन शैली में उसी का अभाव होता जा रहा है। इसी वजह से महानगरों में साहित्य पढ़ने की प्रवृत्ति में ह्रास आया है।

टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में आए क्रांतिकारी परिवर्तन, इंटरनेट, सोशल मीडिया और डिजिटल मीडिया ने साहित्य को किस तरह प्रभावित किया है, यह देखना दिलचस्प होगा। इसने साहित्य को पाठकों की बहुसंख्यक आबादी के लिए सहज उपलब्ध करा दिया है। पाठक के पास पढ़ने की सामग्री का अभाव नहीं है। साहित्य की बहुत सारी किताबें अब आसानी से उपलब्ध हैं। सोशल और डिजिटल मीडिया के दौर में पाठकों की संख्या काफी बढ़ी है। यह अलग बात है कि ये पाठक फौरी लेखकों की तरह फौरी पाठक ही हैं। गंभीर लेखकों की तरह गंभीर पाठक अभी भी कम संख्या में हैं। उन्हीं पर साहित्य का भविष्य टिका हुआ है।

हम रील्स के जमाने में जी रहे हैं। साहित्य के प्रति रुचि में ह्रास के कारणों को समझने के लिए रील्स या शॉर्ट्स के चरित्र को समझना जरूरी है। रील्स या शॉर्ट्स ऐसे वीडियो को कहते हैं जो एक मिनट तक के होते हैं, उससे ज्यादा के नहीं। अक्सर ऐसा देखा गया है कि लिंग और उम्र से निरपेक्ष सभी लोग ऐसे वीडियो देखते घंटों बिता देते हैं। रील्स या शॉर्ट्स के साथ एक शब्द अक्सर सुनने में आता है स्क्रॉल। मोबाईल फोन की स्क्रीन पर स्क्रॉल करते हुए शॉर्ट्स या रील्स देखते हुए घंटों बिताना आम बात है। ऐसा क्यों होता है कि लगभग सभी इस निरर्थक काम में घंटों बिता देते हैं?

मजेदार बात यह है कि हर आदमी दूसरे से चिढ़ता है कि वह कितना मोबाईल देखता है और खुद उसी में लगा रहता है। असल में ऐसे छोटे वीडियो हमें एक मिनट के अंदर क्लाइमैक्स तक लेकर चले जाते हैं। जिस क्लाइमैक्स तक पहुंचने के लिए एक पूरी की पूरी साहित्यिक कृति से गुजरना होता है, वहां ये हमें एक मिनट का वीडियो पहुंचा दे रहा है। किसी भी कृति के

क्लाइमैक्स तक जाते-जाते मनुष्य के मस्तिष्क में डोपामाइन नामक रसायन का स्राव होता है। यही रसायन आनंद की अनुभूति कराता है!

बहरहाल जिस रसायन के स्राव के लिए पूरी साहित्यिक कृति की जर्नी करनी होती है, रील्स या शॉर्ट्स एक मिनट के अंदर उस रसायन के स्राव और आनंद की अनुभूति का सबब बनते हैं। और इस रसायन का स्राव हर मिनट हर वीडियो के साथ हो रहा होता है। मनुष्य इस प्रक्रिया को दोहराता रहता है और समय को भूल जाता है। यह एक तरह की लत है।

साहित्य के सामने अब यह एक बड़ी चुनौती है कि वह आनंद की अनुभूति तक पहुंचने में लगने वाले समय को कितना कम कर सकता है। जिस तरह हर मनुष्य रील्स या शॉर्ट्स की गिरफ्त में है, साहित्य की उन विधाओं के बचने की संभावना अधिक है, जो कम से कम समय में उस अनुभूति तक मनुष्य को पहुंचा सकें।

साहित्य ऐतिहासिक दस्तावेज, तथ्य अथवा भौतिक वस्तु नहीं है। साहित्य में ये सभी तत्व होते तो हैं, पर तथ्यात्मक प्रामाणिकता की अपेक्षा बहुत अधिक नहीं होती। इसके बजाय कल्पना शक्ति के सहारे इन तथ्यों का उपयोग कर यथार्थ गढ़ना होता है। यथार्थ तक पहुंचने के लिए इन तथ्यों को कल्पना शक्ति द्वारा गूंथना पड़ता है। बड़े उद्देश्यों के लिए ऐतिहासिक दस्तावेजों और तथ्यों से काल्पनिक छेड़-छाड़ साहित्य में मान्य होता है। साहित्य की जो विधा समय की गति और नए उपकरणों के साथ जितना तालमेल बिठा पाती है, उसके बचे रहने की उतनी संभावना बनी रहती है। ऐसा यूँ ही नहीं हुआ कि छोटे-छोटे संस्मरणों की किताबें खूब लिखी और पढ़ी जा रही हैं। कविता ने तो हर युग में अपने को नए ढंग से इजाद किया है। कह सकते हैं, कविता और संस्मरण युगानुकूल विधाएं हैं।

संजय राय

युवा कवि और आलोचक। संप्रति सेठ आनंदराम जयपुरिया कॉलेज, कोलकाता में सहायक प्राध्यापक।

साहित्य किसी भी समाज की सांस्कृतिक अस्मिता का जरूरी पक्ष है। किसी खास समय और समाज का साहित्य उस समय और समाज का सांस्कृतिक उत्पाद भी होता है। अतः वह संस्कृति और उसकी सत्ता-केंद्रिकता भी अपनी तमाम विद्रूपताओं के साथ उस साहित्यिक कृति का हिस्सा होती है। साहित्यकार अपने तई उससे जूझते हुए भी, उससे मुक्त नहीं हो पाता। चूंकि साहित्य किसी खास समय और समाज की सांस्कृतिक रचना या अभिव्यक्ति होता है, अगर पाठक या आलोचक उस कृति में बह नहीं जाए तो वह उस रचना को अपने समय और समाज की सत्ता को सहलाता हुआ पाएगा। जो साहित्य अपने समय और समाज की सत्ता के प्रति जितना

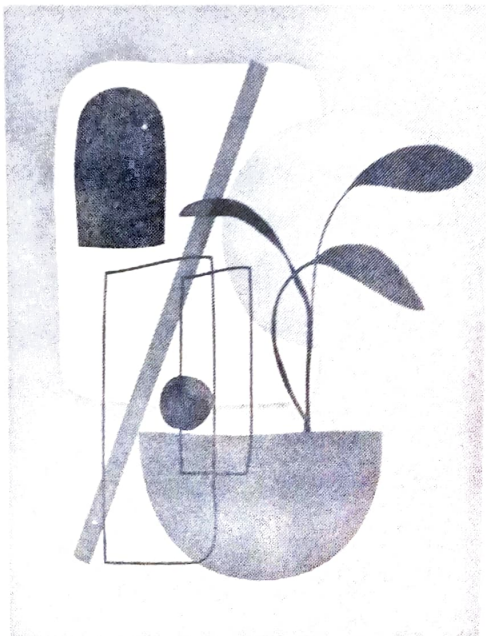

आलोचनात्मक होगा, वह उतना ही सार्थक होगा। समाज के दबे-कुचले और हाशिए के जीवन की आवाज बनने वाला साहित्य ही बचेगा। साहित्य दरअसल तमाम विद्रूपताओं और विसंगतियों के बावजूद अपनी संस्कृति के प्रगतिशील तत्वों को बचाने की कवायद का नाम है।

स्पष्ट है कि सत्ता को सहलाने के बजाय सत्ता-संरचनाओं की पहचान, उनकी खिलाफत और संघर्ष तथा जनसंघर्ष की गाथाएं हमारे समय के साहित्य को जमीन दे रही हैं। साहित्य मुख्यतः खाए-अघाए मध्यवर्ग की वस्तु रहा है। मध्यवर्ग के संघर्ष और हाशिए के संघर्ष में फर्क है। मध्यवर्ग के बिल्कुल निचले तबके और हाशिए के संघर्ष की आवाज बनना ही साहित्य को सार्थकता प्रदान करेगा।

हमारे समय में लिट-फेस्ट का चलन बढ़ा है। लिटररी फेस्टिवल अथवा साहित्य उत्सव पूंजी केंद्रित गतिविधियां हैं। चमक-दमक साहित्य उत्सवों की शोभा हो गई है। इसलिए गंभीर साहित्य के बजाय मंचीय या लोकप्रिय साहित्य इन उत्सवों में अधिक जगह घेरते हैं। मंचीय या लोकप्रिय साहित्य से जुड़ने के लिए किसी सांस्कृतिक ट्रेनिंग की जरूरत नहीं पड़ती। उससे तादात्म्य स्थापित करने के लिए मानसिक मशक्कत नहीं करनी पड़ती। उसमें एक हल्कापन होता है। कई बार तो फूहड़ता भी होती है। अपनी तरफ से कोई मानसिक परिश्रम न करना पड़े- ऐसी चीजें देखने-सुनने का चलन बढ़ा है। ऐसा साहित्य ही बड़े श्रोता और दर्शक समूह को पसंद आ रहा है। ऐसी चीजें ही जनसंख्या के बड़े हिस्से तक पहुंच रही हैं।

इसका एक कारण यह है कि मंचीय या लोकप्रिय साहित्य मुख्यतः गुदगुदाने का काम कर रहा है। न उसमें आलोचनात्मक विवेक है न ही किसी श्रोता या दर्शक में वह कोई आलोचनात्मक विवेक पैदा कर पा रहा है। इसका एक और पहलू है, गंभीर साहित्यकार लिट-फेस्ट के चमक-दमक के आकर्षण में खिंचे चले जा रहे हैं और उसकी चुनौतियों को समझने की कोशिश भी कर रहे हैं।

दरअसल साहित्य भी अब एक प्रॉडक्ट है। वह एक बाजार है जो पूरे विश्व में अन्य सभी चीजों के साथ साहित्य का भी व्यवसाय कर रहा है। साहित्य भी उसके लिए खरीदी-बेचे जानेवाली एक वस्तु भर है। इसलिए साहित्य में व्यक्त संघर्ष भी एक बिकाऊ माल है। इसका एक पहलू यह है कि लेखक भी अब व्यवसायी बन जाने को अभिशप्त है। इस चुनौती को किसी भी लेखक के लिए समझना बहुत जरूरी है।

ग्राम व पोस्ट- चांदुआ, जोड़ा पुकुर के नजदीक, काँचरापाड़ा, उत्तर 24 परगना, पश्चिम बंगाल - 743145 मो.9883468442